eISSN 3049-2610
Research Stream
A Bi-Annual, Open Access Pear Reviewed International Journal
Volume 03, Issue 01, March 2026

पर्यावरणीय ह्रास एवं सतत विकास की आवश्यकता के सन्दर्भ में नैतिकता एवं विधिक दायित्व

डॉ. प्रवीण कुमार शुक्ला[1], देव कुमार ओझा[1]

[1]सहायक आचार्य, विधि विभाग, विक्रमाजीत सिंह सनातन धर्म कॉलेज, नवाबगंज, कानपुर, उ0प्र0

[1]सहायक आचार्य, विधि विभाग, विक्रमाजीत सिंह सनातन धर्म कॉलेज, नवाबगंज, कानपुर

Received: 20 March 2026 Accepted & Reviewed: 25 March 2026, Published: 31 March 2026

Abstract

पर्यावरणीय विधि मानव सभ्यता की स्थिरता और सतत विकास की आधारशिला है। औद्योगिकीकरण, शहरीकरण और वैश्विक तापमान वृद्धि के युग में पर्यावरण संरक्षण वर्तमान में नैतिकता आधारित न होकर विधिक दायित्व आधारित बन गया है। पर्यावरणीय विधियों का मुख्य उद्देश्य मानव जीवन की गुणवत्ता बनाए रखते हुए प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा और न्यायसंगत उपयोग सुनिश्चित करना है। पर्यावरणीय विधियाँ वैश्विक सतत विकास की दिशा में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। यह न केवल पर्यावरण संरक्षण की दिशा में कार्यरत हैं, यद्यपि सामाजिक–आर्थिक प्रगति और भावी पीढ़ियों के हित की रक्षा भी सुनिश्चित करती हैं। 'प्रदूषक भुगतान', 'पूर्व–सावधानी', 'अंतरपीढ़ी न्याय', और 'संसाधनों का सतत उपयोग', जैसे प्रमुख सिद्धांत नीति निर्माण और न्यायिक दृष्टिकोण को दिशा देते हैं। भारत के सन्दर्भ में, वन संरक्षण अधिनियम 1972, पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1986, जल एवं वायु अधिनियमों के माध्यम से नागरिक–कर्तव्य, राज्य की जिम्मेदारी, और मूल अधिकारों के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया जा रहा है। पंचवर्षीय योजनाओं, और मंत्रालयों द्वारा सतत विकास के लिए कई विधिक एवं संवैधानिक उपाय किये गये हैं। वर्तमान में जलवायु परिवर्तन, वन कटाई, प्लास्टिक प्रदूषण और जैव विविधता ह्रास जैसी चुनौतियाँ वैश्विक संकट का रूप ले चुकी हैं। ऐसे में केवल विधिक प्रावधान पर्याप्त नहीं, बल्कि उनके प्रभावी प्रवर्तन, हेतु जनजागरूकता और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग की आवश्यकता है। सतत विकास लक्ष्यों की प्राप्ति भी तभी सम्भव है जब पर्यावरण संरक्षण को प्रत्येक नीति और योजना में समाहित किया जाये। अतः यह कहा जा सकता है कि पर्यावरणीय विधि केवल नियमों का संकलन नहीं है, बल्कि मानव और प्रकृति के मध्य संतुलन का संवैधानिक और नैतिक माध्यम है। इसका प्रभावी क्रियान्वयन ही वह मार्ग प्रषस्त कर सकता है जो आने वाले समय में एक सुरक्षित, स्वस्थ विश्व का निर्माण कर सके।

मुख्य शब्दः पर्यावरणीय विधि, सतत विकास, पर्यावरण संरक्षण, जलवायु परिवर्तन, और जैव विविधता।

Introduction

सतत विकास की बढ़ती वैश्विक पर्यावरणीय चुनौतियों ने पर्यावरणीय विधि की अनिवार्य भूमिका को प्रकटीकृत किया है, जो हमारे ग्रह की पारिस्थितिकी की अखण्डता को सुरक्षित रखने और सतत भविष्य सुनिश्चित करने हेतु अपरिहार्य है। पर्यावरणीय विधि के ऐतिहासिक विकास और समकालीन सततता सिद्धांतों के साथ उसके अभिसरण का अन्वेषण करते हुये पर्यावरण संरक्षण एवं सामाजिक–आर्थिक प्रगति को सुविधाजनक और सीमित दोनों कर सकती हैं। पर्यावरणीय समस्याओं के निवारण हेतु पर्यावरणीय विधि

eISSN 3049-2610
Research Stream
A Bi-Annual, Open Access Pear Reviewed International Journal
Volume 03, Issue 01, March 2026

एक अत्यंत महत्वपूर्ण साधन है। ब्रुटलैंड आयोग ने सतत विकास के सम्बन्ध में कहा है कि ऐसा विकास जो बिना भविष्य की पीढ़ियों की आवश्यकताओं की क्षति पहुँचायें, वर्तमान की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। पर्यावरणीय क्षरण के प्रतिकूल प्रभावों को न्यूनतम करने के लिए विधिक कार्यवाही अत्यंत आवश्यक है। पर्यावरणीय क्षरण का पारिस्थितिकी तंत्र, अर्थव्यवस्था एवं सार्वजनिक स्वास्थ्य पर गम्भीर प्रभाव पड़ता है। आर्थिक वृद्धि और पर्यावरणीय स्थिरता के बीच संतुलन स्थापित करने के उद्देश्य से विधियाँ और नीतियाँ बनायी गयी हैं, जो वैश्विक स्तर पर पर्यावरण सम्बन्धी बढ़ती चेतना का परिणाम हैं।

पुरातन काल में विधि और आर्थिक विषयों में पर्यावरणीय मुद्दों पर विशेष बल नहीं दिया गया था। 19वीं और 20वीं शताब्दी के तीव्र औद्योगिकीकरण ने पर्यावरण को गम्भीर रूप से प्रभावित किया है, जिससे विधिक सुधार की आवश्यकता उत्पन्न हुई। रियो अर्थ सम्मेलन (1992) और स्टॉकहोम सम्मेलन (1972) जैसे ऐतिहासिक आयोजनों ने अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण प्रबंधन को बढ़ावा दिया। इन कार्यक्रमों के परिणामस्वरूप क्योटो प्रोटोकॉल एवं पेरिस समझौते जैसी संधियों का मार्ग प्रशस्त हुआ, जिनका उद्देश्य वैश्विक सहयोग और संयुक्त कार्यवाही को बढ़ावा देना है। इन संधियों की प्रवर्तनीय नीतियाँ एवं उद्देश्यों से सतत विकास के प्रति उनकी प्रतिबद्धता प्रकट होती है।

कई मूलभूत विधिक सिद्धांत पर्यावरण विधि को विनियमित करते हैं। 'प्रदूषक वहन करे' सिद्धांत (Polluter Pays Principle) के अनुसार, पर्यावरणीय क्षति करने वाले को उसकी पुनर्स्थापना का व्यय वहन करना चाहिए। 'पूर्व सावधानी का सिद्धांत' (Precautionary Principle) रोकथाम को प्राथमिकता देता है। 'अंतःपीढ़ी समता सिद्धांत' (Intergenerational Equity Principle) के अनुसार, वर्तमान पीढ़ी की यह जिम्मेदारी है कि वह भविष्य के लिए पर्यावरण को बचाकर रखे। यह सिद्धांत विधि निर्माताओं को तर्कसंगत पर्यावरणीय विधियाँ तैयार करने में सहायता प्रदान करते हैं। अल्पविकसित देशों में पर्यावरणीय नियमों का प्रवर्तन सदैव से एक चुनौतीपूर्ण कार्य रहा है। आर्थिक विषमताएँ, वित्त और तकनीक की कमी, तथा औद्योगिक विकास और संरक्षण के बीच अंतर्द्वंद, राजनीतिक प्रभाव एवं कॉरपोरेट शक्ति इत्यादि नियामक तंत्र को कमजोर कर देते हैं, जिससे सतत विकास कार्यक्रम प्रभावित होते हैं। प्रवर्तन प्रक्रियाओं को सुदृढ़ करना, जागरूकता बढ़ाना और अंतर्राष्ट्रीय समन्वय स्थापित करना अत्यावश्यक हैं। आरहूस कन्वेंशन जैसी संधियाँ निर्णय प्रक्रिया की पारदर्शिता और उत्तरदायित्व सुनिश्चित करती हैं। न्यायालयों द्वारा पर्यावरण अधिकारों को मान्यता देना तथा सरकार या कम्पनियों को उल्लंघन के लिए उत्तरदायी ठहराना इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान है।

अक्सर पर्यावरणीय स्थिरता और आर्थिक विकास को विरोधी लक्ष्य माना जाता है, किंतु पर्यावरण विधि यह स्पष्ट करती है कि नवीनीकरणीय ऊर्जा, हरित प्रौद्योगिकी एवं कॉरपोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व (CSR) को बढ़ावा देने वाले नियम सतत आर्थिक विकास का माध्यम बन सकते हैं। विष्व के कई देशों ने कार्बन मूल्य निर्धारण, एवं पर्यावरण कर को प्रोत्साहित करने वाले विधिक उपबन्ध लागू किये हैं। सतत विकास का लक्ष्य भविष्य की पीढ़ियों के लिए पर्यावरण सरंक्षण हेतु नीति निर्माण एवं सतत विकास की आवश्यकता पर बल देना है।

पर्यावरण विधि एक गतिशील तथा विकसित विधि–शाखा है। इसे क्योटो प्रोटोकॉल एवं पेरिस समझौते जैसे महत्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय समझौतों ने आकार दिया है, जिन्होंने वैश्विक स्तर पर संयुक्त कार्यवाही की भूमिका

eISSN 3049-2610
Research Stream
A Bi-Annual, Open Access Pear Reviewed International Journal
Volume 03, Issue 01, March 2026

तय की थी। 'सावधानी का सिद्धांत', तथा 'प्रदूषक वहन करे सिद्धांत', पर्यावरणीय संरक्षण एवं सतत विकास के अंतर्सम्बद्धता को रेखांकित करता हैं एवं विधिक संरचनाओं के व्यावहारिक अनुप्रयोग, पर्यावरण संरक्षण, प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन एवं प्रदूषण नियंत्रण पर उनके प्रभाव को प्रदर्शित करते हैं।

भारत में पर्यावरण संरक्षण– भारत में लागू पर्यावरणीय संरक्षण विधियाँ नागरिकों एवं संगठनों के प्राकृतिक परिवेश के साथ अंतःक्रिया को भी नियंत्रित करते हैं। पर्यावरणीय विधियों का उद्देश्य न केवल पर्यावरण की रक्षा करना है, बल्कि यह भी सुनिश्चित करना है कि प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग किसके अधिकार क्षेत्र में और किन शर्तों पर होगा? भारत में वन (संरक्षण) अधिनियम, 1972 पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 तथा जल (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1974 प्रमुख पर्यावरणीय विधियाँ हैं जो इस दिशा में क्रियाशील हैं। पर्यावरण की रक्षा और सुधार तथा देश के वन एवं वन्य जीवों की रक्षा करना प्रत्येक राज्य का दायित्व है। प्रत्येक व्यक्ति पर प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा और विकास की विधिक जिम्मेदारी है। लोक नीति सिद्धांतों एवं मौलिक अधिकारों दोनों में पर्यावरण का उल्लेख है। सन् 1985 में पर्यावरण और वन मंत्रालय की स्थापना हुई। संविधान द्वारा विधेयकों, अधिसूचनाओं व आदेशों को विधिक समर्थन प्राप्त है। भारत के प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि वह प्राकृतिक पर्यावरण, जिसमें वन, झीलें, नदियां और वन्य जीव सम्मिलित हैं, की रक्षा और विकास करे तथा संवेदनशील प्राणियों के प्रति संवेदनशील रहे। 'स्वस्थ पर्यावरण' कल्याणकारी राज्य के घटकों में से एक है। सार्वजनिक स्वास्थ्य में सुधार के लिए भी पर्यावरण का संरक्षण और विकास आवश्यक है, जिसके बिना जनस्वास्थ्य सुनिश्चित करना संभव नहीं है।

संविधान का अनुच्छेद 48 कृषि और पशुपालन संगठनों से सम्बन्धित है। यह देश को आधुनिक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अनुरूप कृषि एवं पशुपालन के संगठित उपक्रम करने हेतु बाध्य करता है। इसमें विशेष रूप से नस्लों के संरक्षण एवं विकास, गाय, बछड़े, अन्य दुग्ध पशु एवं कार्यशील पशुओं के वध को रोकने हेतु उपाय करने की बात कही गयी है। संविधान के अनुच्छेद 48क में उल्लेखित है कि राज्य पर्यावरण की रक्षा एवं सुधार तथा राज्य के वन एवं वन्य जीवों की रक्षा के लिए प्रयासरत् रहेगा। पर्यावरण का अधिकार भी एक ऐसा अधिकार है, जिसे मानव विकास और उसकी पूर्ण क्षमता की प्राप्ति के बिना हासिल नहीं किया जा सकता है। अनुच्छेद 21 की व्याख्या सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिये गये निर्णय मेनका गांधी प्रति भारत संघ के बाद विस्तारित किया गया। अनुच्छेद 21 जीवन के मूल अधिकार का प्रावधान करता है। इसमें रोग–रहित एवं संक्रमण–रहित पर्यावरण का अधिकार अंतर्निहित है। स्वस्थ पर्यावरण का अधिकार 'सम्मानजनक जीवन' के अधिकार का महत्वपूर्ण भाग है। संविधान के अनुच्छेद 21 में स्वस्थ पर्यावरण में जीने का अधिकार 'रूरल लिटिगेशन एंड एंटाइटलमेंट केंद्र प्रति राज्य' के निर्णय में प्रस्तुत किया गया था।

पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986– पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 भारत सरकार द्वारा पर्यावरण की सुरक्षा, संरक्षण और सुधार के लिए बनाया गया एक महत्वपूर्ण विधिक प्रावधान है। इसे 19 नवंबर 1986 को प्रभावी किया गया था, जिसका उद्देश्य मानव पर्यावरण को प्रदूषण और अन्य हानिकारक प्रभावों से बचाना है। इस अधिनियम का प्रमुख आधार भारतीय संविधान के अनुच्छेद 253 के अन्तर्गत अंतर्राष्ट्रीय समझौतों को लागू करने के लिए अधिनियम बनाना है। इसके अंतर्गत सरकार को पर्यावरण संरक्षण के लिए प्राधिकरण स्थापित करने और प्रदूषण रोकने के लिए कठोर नियम बनाने की शक्ति दी गयी है। इस अधिनियम का उद्देश्य मानव पर्यावरण पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन के निर्णयों को लागू करना है। ये निर्णय

eISSN 3049-2610
Research Stream
A Bi-Annual, Open Access Pear Reviewed International Journal
Volume 03, Issue 01, March 2026

मानव पर्यावरण की सुरक्षा और संवर्धन तथा लोगों, अन्य जीवों, पौधों और संपत्ति को होने वाले जोखिमों से बचाने से सम्बन्धित हैं। यह अधिनियम पर्यावरणीय सुरक्षा के लिए अम्ब्रेला अधिनियम के रूप में कार्य करता है। यह अधिनियम औद्योगिक गतिविधियों को नियंत्रित करते हुए पर्यावरणीय गुणवत्ता की रक्षा करता है और नागरिकों को पर्यावरण उल्लंघन सम्बन्धी शिकायत करने का अधिकार देता है, जिससे पर्यावरण संरक्षण का तंत्र सशक्त होता है। यह अधिनियम में सरकार की जिम्मेदारी और नागरिकों के अधिकारों को रेखांकित किया गया है। पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 द्वारा जल (रोकथाम और नियंत्रण) अधिनियम, 1974 एवं वायु (रोकथाम और नियंत्रण) अधिनियम, 1981 के अंतर्गत संघ एवं राज्य एजेंसियों की स्थापना की गयी है। यह अधिनियम उत्सर्जन एवं प्रवाह को विनियमित कर पर्यावरण की गुणवत्ता बनाये रखने और उसका सुधार करने के लिए अधिकृत करता है। इसमें कारखानों के स्थान के विनियमन, खतरनाक अपशिष्टों के निष्पादन और जन स्वास्थ्य एवं कल्याण की सुरक्षा की व्यवस्था है। यह अधिनियम प्रदूषण की समकालीन धारणाओं की अनदेखी करता है, जिसमें विकिरण तरंगें, शोर और अतिभारित परिवहन प्रणालियां शामिल हैं, जो सभी पर्यावरण के क्षरण में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। यह पर्यावरण गुणवत्ता मानकों की मांग कर सकता है, विशेष रूप से पर्यावरण प्रदूषकों के उत्सर्जन या निर्वहन से सम्बन्धित मानकों की, तथा पर्यावरण संरक्षण को आगे बढ़ाने के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रमों और रणनीतियों का समन्वय और कार्यान्वयन कर सकता है। यह अधिनियम सरकार को निरीक्षण, उपकरण परीक्षण और अन्य कारणों से किसी स्थान में प्रवेश करने, साथ ही मिट्टी, पानी, हवा या किसी अन्य सामग्री के नमूने का विश्लेषण करने का अधिकार देता है।

संक्षेप में, यद्यपि पर्यावरण संरक्षण अधिनियम ने पर्यावरण संरक्षण में उल्लेखनीय प्रगति की है, फिर भी नए पर्यावरणीय जोखिमों से निपटने और सतत विकास की गारण्टी के लिए और अधिक सुधारों की सख्त आवश्यकता है। अधिनियम के लक्ष्यों को प्राप्त करने और आने वाली पीढ़ियों के लिए पर्यावरण की रक्षा करने के लिए समकालीन प्रदूषण नियंत्रण तकनीकों को अपनाना, निगरानी प्रणालियों में सुधार करना और जनभागीदारी को सषक्त करना आवश्यक होगा।

पर्यावरण (संरक्षण) नियम, 1986 – पर्यावरण (संरक्षण) नियम, 1986 भारत सरकार द्वारा पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 की धारा 6 के अन्तर्गत बनाये गये थे। इन नियमों का मुख्य उद्देश्य देशभर में पर्यावरण प्रदूषण को नियंत्रित करना, पर्यावरणीय गुणवत्ता बनाये रखना तथा उत्सर्जन और अपशिष्ट निपटान के लिये मानक निर्धारित करना है। इन नियमों के अन्तर्गत सरकार को विभिन्न क्षेत्रों में प्रदूषकों के उत्सर्जन की मात्राएँ, प्रदूषण नियंत्रण उपकरणों का प्रयोग, खतरनाक वस्तुओं के निस्तारण की प्रक्रिया, पर्यावरणीय मानकों का निर्धारण, औद्योगिक इकाइयों की स्थापना, संचालन एवं निरीक्षण, दुर्घटनाओं की सूचना व्यवस्था, तथा पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन जैसी व्यवस्थाएँ शामिल हैं। इन नियमों के अंतर्गत विभिन्न उद्योगों, संस्थानों और अन्य इकाइयों के लिए पर्यावरणीय मानक निर्धारित किए गये हैं, जिनका उल्लंघन करने पर दण्डात्मक कार्यवाही का भी प्रावधान है। यह नियम प्रदूषण फैलाने वाली औद्योगिक इकाइयों, अपशिष्ट प्रबंधन, जल, वायु, ध्वनि एवं अन्य प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के लिए प्रभावी दिशा–निर्देश प्रदान करते हैं। साथ ही, केंद्र सरकार को आवश्यकता पड़ने पर किसी भी क्षेत्र को पर्यावरणीय दृष्टि से संवेदनशील क्षेत्र घोषित करने का अधिकार भी इन नियमों के अन्तर्गत प्राप्त है।

eISSN 3049-2610
Research Stream
A Bi-Annual, Open Access Pear Reviewed International Journal
Volume 03, Issue 01, March 2026

राष्ट्रीय पर्यावरण अपीलीय प्राधिकरण अधिनियम, 1997 – राष्ट्रीय पर्यावरण अपीलीय प्राधिकरण अधिनियम, 1997 भारत में पर्यावरणीय मंजूरी और प्रतिबंधों से सम्बन्धित अपीलों को सुनने के लिए एक विशेष न्यायिक निकाय की स्थापना करता है। यह अधिनियम 30 जनवरी 1997 को लागू हुआ था और इसमें कुल 23 धाराएँ हैं जो प्राधिकरण की संरचना, शक्तियों और कार्यप्रणाली से सम्बन्धित हैं। इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 के अन्तर्गत लगाये गए प्रतिबंधों के विरुद्ध अपील सुनना है, विशेषकर उन क्षेत्रों में जहाँ कुछ उद्योग, संचालन या प्रक्रियाओं को संचालित नहीं किया जा सकता या केवल विशेष सुरक्षा उपायों के साथ संचालित किया जा सकता है।

प्राधिकरण की संरचना में एक अध्यक्ष (जो सर्वोच्च न्यायालय का सेवानिवृत्त न्यायाधीश या उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश होता है), एक उपाध्यक्ष और तीन अन्य सदस्य शामिल होते है। प्राधिकरण का मुख्यालय दिल्ली में स्थित है और इसके सभी सदस्यों का कार्यकाल तीन वर्ष का होता है, जिसे पुनर्नियुक्ति के लिए योग्य माना जाता है। यह एक अर्ध–न्यायिक निकाय है जो पर्यावरणीय मंजूरी, परमिट और नियामक निर्णयों से सम्बन्धित विवादों के निपटारे के लिए एक मंच प्रदान करता है।

राष्ट्रीय पर्यावरण अपीलीय प्राधिकरण को अनौपचारिक रूप से 'ग्रीन कोर्ट' भी कहा जाता है क्योंकि यह पर्यावरणीय मुद्दों और अपीलों को सम्बोधित करने में विशेषज्ञता रखता है। इसके पास पर्यावरणीय विज्ञान और तकनीकी पहलुओं की गहन समीक्षा करने की क्षमता होती है, जिससे सूचित और विवेकपूर्ण निर्णय लिए जा सकते हैं।

समय के साथ यह प्राधिकरण अपनी प्रासंगिकता खोता गया और अप्रभावी साबित हुआ और अंततः राष्ट्रीय हरित अधिकरण अधिनियम, 2010 के अन्तर्गत स्थापित राष्ट्रीय हरित अधिकरण द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया, जो व्यापक अधिकार क्षेत्र और अधिक प्रभावी तंत्र प्रदान करता है।

राष्ट्रीय पर्यावरण अधिकरण अधिनियम, 1995– राष्ट्रीय पर्यावरण अधिकरण अधिनियम, 1995 का उद्देश्य खतरनाक पदार्थों के उपेक्षापूर्ण प्रबंधन से उत्पन्न दुर्घटनाओं से व्यक्तियों, सम्पत्ति और पर्यावरण को हुई क्षति के मामलों में शीघ्र और प्रभावी राहत प्रदान करना था। इस अधिनियम के अंतर्गत 'राष्ट्रीय पर्यावरण न्यायाधिकरण' की स्थापना की गयी, जिसे ऐसी दुर्घटनाओं में पूर्ण दायित्व सिद्धांत के आधार पर पीड़ितों को प्रतिकर दिलाने, सार्वजनिक देयता बीमा अधिनियम के अनुसार राहत देने और पर्यावरणीय न्याय को शीघ्रता से सुनिश्चित करने के अधिकार प्राप्त थे। न्यायाधिकरण को त्वरित निर्णय लेने, आवेदन प्राप्त होने के छह माह के भीतर सुनवाई पूरी करने और क्षतिपूर्ति की उचित व्यवस्था करने की शक्तियाँ प्राप्त थीं। सीमित अधिकार क्षेत्र और अपेक्षित परिणामों के अभाव में इस अधिनियम के स्थान पर राष्ट्रीय हरित अधिकरण अधिनियम, 2010 द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया है।

राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण अधिनियम, 2010– राष्ट्रीय हरित अधिकरण की स्थापना 18 अक्टूबर 2010 को हुयी थी। ऑस्ट्रेलिया व न्यूजीलैंड के बाद भारत तीसरा देश बना है जहा पर्यावरण न्यायाधिकरण की स्थापना की गयी है। राष्ट्रीय हरित अधिकरण का मुख्यालय नई दिल्ली में है और क्षेत्रीय कार्यालय भोपाल, पुणे, कोलकाता तथा चेन्नई में अवस्थित हैं।

eISSN 3049-2610
Research Stream
A Bi-Annual, Open Access Pear Reviewed International Journal
Volume 03, Issue 01, March 2026

राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण अधिनियम, 2010 का उद्देश्य भारत में पर्यावरण संरक्षण, वनों एवं अन्य प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण से सम्बन्धित मामलों का प्रभावी और शीघ्र निपटारा करना है। इस अधिनियम के अन्तर्गत राष्ट्रीय हरित अधिकरण (National Green Tribunal & NGT) की स्थापना की गयी है, जो पर्यावरणीय विवादों को शीघ्रता से निपटाने में विषेष भूमिका निभाता है। यह अधिकरण विधिक अधिकारों के प्रवर्तन, क्षतिपूर्ति देने, और व्यक्तियों एवं सम्पत्ति को हुयी क्षति के लिए राहत प्रदान करने में सक्षम है। अधिकरण को प्राप्त आवेदनों या अपीलों का निस्तारण छः माह के अन्दर करने की व्यवस्था की गयी है।

यह अधिनियम प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों द्वारा संचालित होता है, जिससे पर्यावरण मामलों में न्याय प्रक्रिया त्वरित और प्रभावी बनी रहे। राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण अधिनियम, 2010 न केवल पर्यावरणीय संरक्षण की दिशा में एक विधिक कदम है बल्कि नागरिकों के संवैधानिक अधिकारों की रक्षा भी करता है।

राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण अधिनियम, 2010 का मुख्य उद्देश्य पर्यावरण संरक्षण तथा उससे सम्बन्धित विवादों का प्रभावी, शीघ्र और विशेषज्ञ न्याय प्रदान करना है, जिससे पर्यावरण के प्रति संवेदनशीलता बढ़े और पर्यावरणीय न्याय प्रणाली अधिक सशक्त बने।

भारत में सतत विकास के सन्दर्भ में नीति– पर्यावरण संरक्षण, टिकाऊ वृद्धि का अभिन्न अंग है। पर्यावरण की उचित सुरक्षा के बिना विकास संभव नहीं है। सतत विकास केवल सकारात्मक पर्यावरणीय उपायों के माध्यम से ही प्राप्त किया जा सकता है। साथ ही, पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 ने भी अपने उद्देश्यों में सतत विकास को सम्मिलित किया है। विधि के लक्ष्यों एवं उद्देश्यों की प्राप्ति केवल उसी दशा में संभव है जब इसे विधिक रूप में प्रतिपादित किया जाए। योजना निर्माण के दौरान पर्यावरण संरक्षण संरक्षण को चतुर्थ पंचवर्षीय योजना (1969–1974) में स्पष्ट रूप से उल्लेखित किया गया। मानव पर्यावरण पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन, जो जून 1972 में स्टॉकहोम, स्वीडन में आयोजित हुआ, भारतीय पर्यावरण आंदोलन की शुरुआत का प्रतीक था। 1976 में इस सम्मेलन के परिणामस्वरूप भारतीय संविधान में 42वाँ संशोधन लाया गया, जिसमें देश भर में पर्यावरण संरक्षण हेतु विधिक उपबंध किए गए। सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985–1990) में पर्यावरणीय सुधारों को क्रियान्वित करते हुए गंगा कार्य योजना का सूत्रपात किया गया जिससे गंगा नदी के जल की शुद्धता सतत बनी रहे और इसमें होने वाले प्रदूषण को रोका जा सके। इस कारण भविष्य की विकास योजनाओं में पर्यावरणीय कारकों को सम्मिलित करने और पर्यावरण को हानि पहुँचाने वाली गतिविधियों के लिए कठोर नियंत्रण की अनुशंसा की गई। भारत सरकार ने आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992–1997) में 'प्रदूषक भुगतान' के सिद्धांत एवं सतत विकास के सिद्धांतों को सभी प्रकार के पर्यावरणीय प्रदूषण की रोकथाम के लिए अपनाया। बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012–2017) के दौरान तीव्र, सतत और अधिक समावेशी वृद्धि की थीम के साथ व्यापक रणनीति अपनाकर निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति का प्रयास किया गया। इसमें यह रेखांकित किया गया कि पर्यावरण संरक्षण और सतत विकासकृदोनों संभव हैं, जिससे जीवन के स्तर की गुणवत्ता में भी वृद्धि होती है। 21वीं सदी में भारत के पर्यावरण संरक्षण और सतत विकास को बढ़ावा देने में पर्यावरण और वन मंत्रालय की प्रमुख भूमिका रही है। भारत सरकार के पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल और वियना समझौता लागू करने हेतु एक राष्ट्रीय एजेंसी ओजोन सेल की स्थापना की है। इसी मिशन के हिस्से के रूप में मंत्रालय ने अंतर्राष्ट्रीय सहयोग एवं सतत विकास विभाग भी स्थापित किया, जो सतत विकास के पहलों का समन्वय करने के लिए उत्तरदायी है।

eISSN 3049-2610
Research Stream
A Bi-Annual, Open Access Pear Reviewed International Journal
Volume 03, Issue 01, March 2026

संविधान एवं विधि में भारत की पर्यावरणीय प्रतिबद्धता व सतत विकास को प्रदर्शित करने वाली अनेक विधिक एवं संवैधानिक व्यवस्थाएँ हैं।

सतत विकास पर प्रभावशीलता और प्रभाव– सतत विकास को बढ़ावा देने में पर्यावरण कानूनों की प्रभावशीलता विधिक ढाँचों की वृद्धि और उनके व्यावहारिक अनुप्रयोगों का केंद्रीय विषय है। पर्यावरण कानून, यदि सुव्यवस्थित और प्रभावकारी रूप से लागू किए जाएं, तो वे पर्यावरण संरक्षण और सामाजिक–आर्थिक प्रगति के बीच संतुलन स्थापित करने में प्रमुख भूमिका निभा सकते हैं। सतत विकास को बढ़ावा देने में पर्यावरण कानूनों की प्रभावशीलता बहुआयामी विषय है। कुछ क्षेत्रों ने पर्यावरण एवं सततता के लक्ष्यों को अपने विधिक ढांचे में सफलतापूर्वक सम्मिलित किया है, जिससे सामाजिक–आर्थिक विकास पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा। उदाहरण के लिए, कोस्टा रिका की प्रगतिशील पर्यावरण नीतियाँ, जैसे परिस्थितकीय तंत्र सेवा भुगतान कार्यक्रम, ने आर्थिक वृद्धि और पर्यावरण संरक्षण के बीच संतुलन को सक्षम किया है। यद्यपि कई क्षेत्रों में चुनौतियाँ बनी हुई हैं, जहाँ आर्थिक हित कभी–कभी पर्यावरणीय चिंताओं से आगे निकल जाते हैं, जिससे सतत विकास के प्रयासों में बाधाएँ उत्पन्न होती हैं।

सतत विकास लक्ष्यों की प्राप्ति– पर्यावरण कानूनों को संयुक्त राष्ट्र द्वारा 2015 में स्वीकार किये गये सतत विकास लक्ष्यों की पूर्ति का साधन मान्यता मिलती जा रही है। सतत विकास लक्ष्यों में अनेक उद्देश्य सम्मिलित हैं, जैसे गरीबी उन्मूलन, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, स्वच्छ जल, और जलवायु कार्यवाही, जो सभी पर्यावरण संरक्षण से जुड़े हुए हैं। प्रभावकारी पर्यावरण विधियाँ इन लक्ष्यों की प्राप्ति में सीधे योगदान देते हैं। जैसे, वायु एवं जल गुणवत्ता नियंत्रित करने वाले विधिक उपबन्ध स्वच्छ व सुरक्षित पेयजल और वायु की उपलब्धता सुनिश्चित करते हैं, जो स्वास्थ्य और कल्याण (सतत विकास लक्ष्य–3) के लिये आवश्यक हैं।

प्रभावकारी पर्यावरण विधियाँ जैव विविधता संरक्षण एवं पारिस्थितिकी सेवाओं के प्रावधान में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। संरक्षित क्षेत्र स्थापित करने, भूमियों के उपयोग को विनियमित करने और संरक्षण लक्ष्यों को तय करने वाले विधियाँ अत्यंत संवेदनशील पारिस्थितिक स्थलों की रक्षा एवं प्रजातियों की हानि की रोकथाम में उपयोगी हैं। ऐसे उपाय न केवल पारिस्थितिकी की सेहत (सतत विकास लक्ष्य–15) का समर्थन करते हैं, बल्कि परागण, जल शुद्धिकरण एवं जलवायु नियंत्रण जैसी आवश्यक सेवाएँ भी प्रदान करते हैं, जो संवहनीय विकास के लिए महत्त्वपूर्ण हैं।

प्रदूषण नियंत्रण के उद्देश्य से बनाए गए पर्यावरण विधियों का जनस्वास्थ्य पर प्रत्यक्ष प्रभाव होता है। उदाहरणस्वरूप, औद्योगिक उत्सर्जन, अपशिष्ट प्रबंधन, और रासायनिक पदार्थों के नियमन से प्रदूषणजन्य बीमारियाँ कम होती हैं, जिससे कल्याण (सतत विकास लक्ष्य–3) में वृद्धि होती है और उत्पादक कार्यबल को बढ़ावा मिलता है। साथ ही, प्रदूषकों में कमी से पारिस्थितिकी तंत्र लाभान्वित होते हैं एवं भूमि तथा जल के जीवन (सतत विकास लक्ष्य–14 और 15) को सहयोग मिलता है।

चुनौतियाँ– पर्यावरण विधियों के संभावित लाभों के बावजूद, कई चुनौतियाँ और विषमताएँ विद्यमान हैं। इन विधियों की प्रभावशीलता प्रायः अपर्याप्त प्रवर्तन, नियामक नियंत्रण, और दीर्घकालिक संवहनीयता की तुलना में अल्पकालिक आर्थिक हितों की प्राथमिकता जैसे मुद्दों से प्रभावित होती है। इसके अतिरिक्त कुछ देशों,

eISSN 3049-2610
Research Stream
A Bi-Annual, Open Access Pear Reviewed International Journal
Volume 03, Issue 01, March 2026

विशेषतः संसाधन सीमित देशों में, व्यापक पर्यावरण विधियों को प्रभावी ढंग से लागू करने और प्रवर्तित करने में कठिनाई आती है।

सतत विकास को बढ़ावा देने में पर्यावरणीय विधियों की प्रभावशीलता कई कारकों पर निर्भर करती है, जिनमें विधियों की प्रवर्तनीयता, राजनीतिक इच्छा शक्ति, तथा सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियाँ सम्मिलित है। फिर भी, जब ये विधियाँ सुव्यवस्थित एवं प्रभावकारी रूप से लागू होती हैं, तो इनका प्रभाव केवल पर्यावरण संरक्षण तक ही सीमित नहीं रहता है बल्कि वह अनेक सतत विकास लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आधार भी प्रदान करती हैं, जिससे सभी के लिए स्वस्थ, समतामूलक एवं संवहनीय भविष्य सुनिश्चित होता है।

आज के समय में, जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता हानि, तथा संसाधन क्षय जैसी वैश्विक चुनौतियों के मध्य, सतत विकास को आगे बढ़ाने में पर्यावरणीय विधियों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। इनकी सफलता राष्ट्रों, हितधारकों एवं नीति निर्माताओं के बीच सहयोगपूर्ण प्रयासों पर निर्भर करती है, जिससे ऐसे विधिक ढांचे स्थापित किए जा सकें जो न केवल पर्यावरण की रक्षा करें, बल्कि अधिक सतत एवं समृद्ध विश्व की ओर प्रगति भी सुनिश्चित करें।

वर्तमान में विश्व कई गम्भीर पर्यावरणीय चुनौतियों से जूझ रही है जिन पर तत्काल ध्यान देने और कार्यवाही करने की आवश्यकता है।

1. वैश्विक स्तर पर अभूतपूर्व गर्मी
2. ग्रीनहाउस गैसों के बढ़ते उत्सर्जन, वैश्विक तापमान में सतत वृद्धि (अंटार्कटिका में तापमान 20 डिग्री सेल्सियस तक चला जा रहा है।)
3. जलवायु संकट के कारण उष्णकटिबंधीय तूफान और अन्य मौसम सम्बन्धी घटनायें– जैसे तूफान, गर्म लहरें और बाढ़ इत्यादि।
4. विगत 50 वर्षों में मानव उपभोग, जनसंख्या, वैश्विक व्यापार और शहरीकरण में तीव्र वृद्धि, जिसके परिणामस्वरूप मानवता पृथ्वी के संसाधनों का प्राकृतिक रूप से पूर्ति की तुलना में अधिक उपयोग कर रही है। (डब्ल्यूडब्ल्यूएफ की 2020 की एक रिपोर्ट में पाया गया है कि स्तनधारियों, मछलियों, पक्षियों, सरीसृपों और उभयचरों की आबादी में 1970 और 2016 के बीच औसतन 68% की गिरावट आई है। अंटार्कटिका में जलवायु परिवर्तन के कारण समुद्री बर्फ पिघलने से पेंगुइन पर भारी असर पड़ रहा है। ऐसा माना जा रहा है कि वर्ष 2100 तक पेंगुइन की पूरी आबादी खत्म हो सकती है।)
5. **प्लास्टिक कचरे का संकट–** वर्ष 1950 में, विष्व में प्रति वर्ष 2 मिलियन टन से अधिक प्लास्टिक का उत्पादन होता था। वर्ष 2015 तक, यह वार्षिक उत्पादन बढ़कर 419 मिलियन टन हो गया। वर्ष 2040 तक प्लास्टिक कचरे का संकट बढ़कर 29 मिलियन मीट्रिक टन प्रति वर्ष तक होने की आषंका जाहिर किया जा रहा है। यदि इसमें माइक्रोप्लास्टिक को भी शामिल कर दिया जाये तो वर्ष 2040 तक महासागरों में प्लास्टिक की कुल मात्रा 600 मिलियन टन तक पहुँच सकती है।

eISSN 3049-2610
Research Stream
A Bi-Annual, Open Access Pear Reviewed International Journal
Volume 03, Issue 01, March 2026

6. **वनों की कटाई–** वर्ष 2030 तक धरती पर केवल 10% जंगल ही बचे रह जायेगे। वन भूमि की सुरक्षा के प्रयासों के बावजूद, विधिक रूप से वनों की कटाई बड़े पैमाने पर हो रही है, और वैश्विक उष्णकटिबंधीय वनों की कटाई का लगभग एक तिहाई हिस्सा ब्राजील के अमेजन वन में होता है।

7. **वैश्विक तापमान वृद्धि–** वैश्विक तापमान वृद्धि ने न केवल सतह को प्रभावित किया है बल्कि यह महासागरीय अम्लीकरण का भी मुख्य कारण है। महासागर पृथ्वी के वायुमण्डल में छोड़ी जाने वाली कार्बन डाइऑक्साइड का लगभग 30% अवशोषित कर लेते हैं। समुद्री अम्लीकरण का समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र और प्रजातियों, उसके खाद्य जालों पर विनाशकारी प्रभाव पड़ता है। एक अनुमान के अनुसार वर्ष 2050 तक प्रवाल भित्तियों के पूरी तरह से समाप्त हो जाने का खतरा मडरा रहा है।

8. वैश्विक खाद्य प्रणाली मानव–जनित ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन के एक–तिहाई तक के लिए जिम्मेदार है। फसल उत्पादन में उर्वरकों के उपयोग के माध्यम से नाइट्रस ऑक्साइड जैसी ग्रीनहाउस गैसें निकलती हैं।

9. कोबाल्ट तेजी से नवीकरणीय ऊर्जा परिवर्तन के मूल में खनिज एक निर्णायक है। इलेक्ट्रिक वाहनों (ईवी) को शक्ति प्रदान करने वाली बैटरी सामग्री के एक प्रमुख घटक के रूप में, डीकार्बोनाइजेशन प्रयासों की प्रगति के साथ कोबाल्ट की माँग में निरंतर वृद्धि हो रही है। खनन क्षेत्रों में, वैज्ञानिकों ने उच्च रेडियोधर्मिता स्तर देखा है। चट्टानों से निकलने वाली धूल साँस लेने में भी समस्या पैदा करती है।

उपसंहार– अंततः, पर्यावरण विधियों की सफलता विधिक संरचना की मजबूती, प्रवर्तन–क्षमता, सार्वजनिक भागीदारी, और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग में निहित है। सतत विकास को प्राप्त करने हेतु वैज्ञानिक, न्यायिक एवं सामाजिक दृष्टिकोण से समन्वित प्रयास आवश्यक है। विधिक ढाँचा जितना सहभागी, पारदर्शी और गतिशील होगा, उतना ही वह भविष्य की पर्यावरणीय चुनौतियों का सामना करने में सक्षम होगा। सतत विकास केन्द्रित पर्यावरण विधियों की नीति–संशोधन, प्रवर्तन और सहयोग से न केवल सुरक्षा बल्कि नवाचार, रोजगार और सामाजिक–आर्थिक समृद्धि भी संभव है। यह लगातार बदलती वैश्विक परिस्थितियों में पृथ्वी की पारिस्थितिकीय अखंडता, आर्थिक सक्षमता तथा भावी पीढ़ियों के स्वास्थ्य और कल्याण के लिए अपरिहार्य है। इसलिए, नीति निर्माता, नागरिक, और बिजनेस सभी को पर्यावरण विधि के परिवर्तनशील पहलुओं को समझकर समुचित कार्यवाही एवं सहभागिता करनी चाहिए जिससे एक स्थाई एवं न्यायसंगत भविष्य सुनिश्चित हो सके। मानव क्रियाकलापों एवं प्राकृतिक पर्यावरण के मध्य पारस्परिक सम्बन्धों को संचालित करने वाले सुविचारित, गतिक और लागू करने योग्य विधिक ढाँचे के बिना सतत विकास की प्राप्ति असंभव है। सततता और मानव प्रगति के मध्य संतुलन स्थापित करने के लिए विधिक ढाँचे को और अधिक समग्र, क्रियाशील और सहभागी बनाना आवश्यक है, जिससे संसाधनों की सुरक्षा और आने वाली पीढ़ियों हेतु अवसरों की उपलब्धता सुनिश्चित हो सके।

सन्दर्भ सूची

1. United Nations. (2015). Transforming our world: The 2030 Agenda for Sustainable Development. Retrieved from https://sdgs.un.org/2030agenda
2. United Nations Climate Change. (2015). Paris Agreement. Retrieved from https://unfccc.int/process-and-meetings/the-paris-agreement/the-paris-agreement
3. CBD. (1992). Convention on Biological Diversity. Retrieved from https://www.cbd.int/convention/

4. ECLAC. (2017). Environmental Law and Sustainable Development. Retrieved from https://repositorio.cepal.org/bitstream/handle/11362/43015/S1701040_en.pdf
5. Press Information Bureau, Environment Protection under Constitutional Framework of India, 4 June 2014 https://pib.gov.in/newsite/printrelease.aspx?relid=105411
6. Australia - Murray-Darling Basin Plan
7. European Commission. (2020). The European Green Deal. Retrieved from https://ec.europa.eu/info/strategy/priorities-2019-2024/european-green-deal_en
8. Maneka Gandhi vs. Union of India, (AIR 1978 SC 597).
9. China - Air Pollution Control and the Role of Legal Reform
10. Maas, W., & Wheeler, D. (2018). Sustainable development and environmental law: convergence and divergence. Environmental Policy and Governance, 28(4), 229-241.
11. McAllister, L. S., & Lubell, M. N. (2004). Policy networks and policy change: Lessons from land use policy making. Policy Studies Journal, 32(3), 341-361.
12. M.C. Mehta vs. Union of India, AIR 1987 SC 1086.
13. Murray-Darling Basin Authority. (2021). Murray-Darling Basin Plan. Retrieved from https://www.mdba.gov.au/about-basin-plan
14. OECD. (2018). Environmental performance reviews: Brazil. Retrieved from https://www.oecd-ilibrary.org/environment/environmental-performance-reviews-brazil-2018_9789264281614-en
15. Parikh, J. K., & Panda, M. (2013). Payment for Ecosystem Services and law: An analysis of legal framework in India. International Journal of Law, Environment, and Technology, 1(1), 16-28.
16. Rural Litigation and Entitlement Kendra vs. State, AIR 1988 SC 2187.